P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-3, February-2019
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

रस सिद्धान्त विमर्श

चन्द्र किशोर
असिस्टेंट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
ब्रह्मावर्त पी0 जी0 कॉलेज,
मन्धना, कानपुर, उ0 प्र0

सारांश

काव्य को पढ़ने, सुनने या नाटक आदि को देखते समय जो आनन्द की अनुभूति होती है, उसे रस कहते हैं अर्थात् रस अन्तःकरण की वह शक्ति है, जिसके कारण इन्द्रियाँ अपना कार्य करती हैं, मन कल्पना करता है, स्वप्न की स्मृति रहती है। रस आनन्द रूप तथा विशाल एवं विराट का अनुभव है। ''रसो वैरसः'' अर्थात् वह परमात्मा ही रस रूप आनन्द है।

सुख–दुःखात्मक किसी भी प्रकार के दृश्यावलोकन, काव्य के पठन, श्रवण से दृवीभूत होकर पाठक या श्रोता के मन में जो एक विशेष प्रकार की 'अनिर्वचनीयता', अदृश्य या आमूर्त अनुभूति सी स्वतः प्रकाशित होती है, उसी का नाम रस है। उसकी अनुभूति के क्षणों में व्यक्ति की मनोदशा और चेहरे के हाव–भाव में एक प्रकार की स्वाभाविकता आ जाती है। उस स्थिति में मुख से अनायास हाय!, ओह!, आह!, अरे! जैसे शब्द निकलते हैं, जो रस के स्वरूप को अभिव्यञ्जित करते हैं।

मुख्य शब्द : रसानुभूति, विशाल तथा विराट आनन्द की अनुभूति।

प्रस्तावना

काव्यशास्त्र की परम्परा में 'काव्य की आत्मा' किस तत्व को माना जाये, इस विषय को लेकर अब तक छः सम्प्रदाय प्रादुर्भूत हुए हैं, जिन्हें प्रस्थान एंव सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है – जो निम्नलिखित हैं :–

रस सम्प्रदाय

'आचार्य भरत मुनि' द्वितीय शताब्दी

अलंकार सम्प्रदाय

'आचार्य भामह' छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध

रीति सम्प्रदाय

'आचार्य वामन' आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

ध्वनि सम्प्रदाय

'आचार्य आनन्दवर्द्धन' नवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

वक्रोक्ति सम्प्रदाय

'आचार्य कुन्तक' 10वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

औचित्य सम्प्रदाय

'आचार्य क्षेमेन्द्र' 11वीं शताब्दी का मध्यकाल

इन सम्प्रदायों में किसी ने उस 'आत्म तत्व' को 'अलंकारों' में किसी ने 'रीति' में, किसी ने 'वक्रोक्ति' में, तो किसी ने 'औचित्य' में खोजने का प्रयत्न किया। किसी ने उस 'तत्व' को 'ध्वनि' में पाया तो किसी ने 'रस' स्वरूप माना। इन काव्यशास्त्र की परम्परा में जितने भी सम्प्रदाय हुए उन सबमें 'रस' सम्प्रदाय सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण है। रस सिद्धान्त के विषय में सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में रस सूत्र का निरूपण किया –''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रस निष्पत्तिः।'' इसके बाद परवर्ती आचार्यों द्वारा भरत सूत्र को लेकर अलग–अलग तरीके से व्याख्या की गई और अलग–अलग तरीके से 'रस' सिद्धान्त को स्थापित करने का प्रयास किया गया। परिणामस्वरूप आचार्यों में रस सिद्धान्त को लेकर 'वाद–प्रतिवाद' की परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ जिनमें मुख्य हैं :–

1. 'भट्टलोल्लट' का – उत्पत्तिवाद
2. 'शङ्कुक' का – अनुमितिवाद
3. 'भट्टनायक' का – भुक्तिवाद
4. 'अभिनवगुप्त' का – अभिव्यक्तिवाद

परवर्ती कालीन अन्य आचार्यों में आचार्य आनन्दवर्द्धन, आचार्य अभिनवगुप्त, आचार्य मम्मट, कविराज विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ का नाम आता है, जिन्होंने 'रस' की प्रधानता को काव्यतत्वों में स्वीकार किया है।

अध्ययन का उद्देश्य

सहृदय सामान्य एवं साहित्य प्रेमी सामाजिकों में 'रस सिद्धान्त' विषयक यथार्थ का परिज्ञान कराना।

साहित्यावलोकन

आचार्य भरतमुनि प्रणीत– नाट्यशास्त्र, आधारित टीका अभिनवगुप्त प्रणीत– 'अभिनवभारती' सम्पादक सत्यप्रकाश शर्मा, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी. 2012

श्रीमम्मटाचार्य विरचित काव्यप्रकाश : व्याख्याकार – स्व0 आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, चौखम्भाा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 1998।

कविराज विश्वनाथ प्रणीत– साहित्य दर्पण, व्याख्याकार विद्यावाचस्पति,मोतीलाल–बनारसीदास प्रकाशन दिल्ली–वाराणसी, नवम् संस्करण . 1977

श्री आनन्दवर्द्धनाचार्य विरचित– 'ध्वन्यालोक' व्याख्याकार – आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, प्रकाशक – ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय संस्करण – 1998।

पण्डितराज श्री जगन्नाथ विरचित– रसगङ्गाधर, व्याख्याकार – पण्डित मदनमोहन झा, प्रकाशक – चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी 2016

आचार्य भरतमुनि का रस सूत्र

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।।''

(1)

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

विभाव

स्थायीभावों के उद्बोधक कारण को 'विभाव' कहते हैं। अर्थात् जो व्यक्ति, पदार्थ अथवा बाह्य विकार अन्य व्यक्ति के हृदय में भावोद्रेक करता है, उन कारणों को 'विभाव' कहते हैं। विभाव दो प्रकार के होते हैं :–

क. आलम्बन विभाव
ख. उद्दीपन विभाव

आलम्बन विभाव

जिसका आलम्बन या सहारा पाकर स्थायीभाव जागृत होते हैं, आलम्बन विभाव कहलाता है। जैसे– नायक–नायिका। आलम्बन विभाव के दो पक्ष है– आश्रय आलम्बन व विषय आलम्बन जिसके मन में भाव जगे वह आश्रय आलम्बन कहलाता है तथा जिसके प्रति या जिसके कारण मन में भाव जगे वह विषयालम्बन कहलाता है।

उदाहराणार्थ

यदि दुष्यन्त के मन में शकुन्तला के प्रति 'रति' नामक स्थायीभाव जागता है, तो दुष्यन्त आश्रय और शकुन्तला विषय होगा।

उद्दीपन विभाव

जिन वस्तुओं या परिस्थितियों को देखकर स्थायीभाव उद्दीप्त होने लगता है अर्थात् जो स्थायी भावों को उद्दीप्त करें, उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं। जैसे – रमणीक उद्यान, चाँदनी रात, एकान्त स्थल, कोकिल–कूजन, नायक–नायिका की शारीरिक चेष्टायें आदि।

अनुभाव

आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों के कारण उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाशित करने वाला कार्य अर्थात् मनोभाव को व्यक्त करने वाले शरीर–विकार अनुभाव कहलातें हैं।

उदाहरणार्थ

शकुन्तला के सौन्दर्य को देखकर दुष्यन्त के मन में अनेकों प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं :–

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै–
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्ड पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।। (2)

अनुभावों की संख्या आठ मानी गई है –

क) स्तम्भ
ख) स्वेद
ग) रोमांच
घ) स्वर भंग
ड़) कम्प
च) विवर्णता अर्थात् रंगहीनता
छ) अश्रु
ज) प्रलय अर्थात् संज्ञान हीनता या निश्चेष्टता।

अनुभाव के चार भेद हैं :–

क) कायिक
ख) मानसिक
ग) वाचिक
घ) आहार्य

व्यभिचारीभाव

मन में संचरण करने वाले अर्थात् आने–जाने वाले भावों को 'संचारी' या 'व्याभिचारी' भाव कहते हैं। व्याभिचारीभाव 'स्थायीभावों' के सहायक हैं, जो अनुकूल परिस्थितियों में घटते–बढ़ते हैं। आचार्य भरत ने इन भावों के वर्गीकरण के चार सिद्धान्त माने हैं:–

1) देश–काल और अवस्था
2) उत्तम, मध्यम और अधम प्रकृति के लोग
3) आश्रय की अपनी प्रकृति या अन्य व्यक्तियों की उत्तेजना के कारण अथवा वातावरण का प्रभाव।
4) स्त्री–पुरूष का स्वभाव भेद।

निर्वेद, शंका, लज्जा, आलस्य आदि व्याभिचारी भावों की संख्या–33 है।

रसस्वरूप एवं रससूत्र विमर्श (रस के प्रमुख वाद)

जब हम काव्य का श्रवण या नाटक, धारावाहिक को देखते हैं, उस समय विभाव, अनुभाव आदि की प्रतीति होने लगती है, जो अन्तःकरण के अनुकूल होने के कारण बहुत सुन्दर प्रतीति होती है और व्यक्ति के हृदय में वासना रूप में विद्यमान 'रति' आदि भावनायें जागृत हो जाती हैं। जिससे व्यक्ति विशेष के कोमल हृदय में एक विशेष प्रकार की आनन्दानुभूति होने लगती है, इसी को हम अलौकिक आनन्द कहते हैं। यही रस का स्वरूप है।

परवर्ती आचार्यों में भरतसूत्र की अलग–अलग तरीके से व्याख्या की गई, परिणामस्वरूप रस सिद्धान्त को

लेकर एक वाद–प्रतिवाद का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें मुख्य चार वाद हैं –

उत्पत्तिवाद

पूर्व मीमांसक 'भट्टलोल्लट' का सिद्धान्त है। इन्होंने भरत सूत्र में आये 'संयोग' शब्द के तीन प्रकार से अर्थ किये हैं–सथायीभावों के साथ 'उत्पाद्य–उत्पादकभाव' सम्बन्ध, अनुभाव के साथ– 'गम्य–गमक भाव सम्बन्ध' तथा संचारीभावों के साथ–'पोष्य–पोषक' भाव सम्बन्ध है। इसी प्रकार भरत सूत्र में आये 'निष्पत्ति' का अर्थ – 'उत्पत्ति' किया है।

अनुमितिवाद

नैयायिक शङ्कुक का सिद्धान्त है। इन्होंने भरत सूत्र में आये 'संयोग' शब्द का अर्थ 'अनुमाप्य– अनुमापक' भाव सम्बन्ध तथा 'निष्पत्ति' का अर्थ – 'अनुमिति' किया है।

भुक्तिवाद

सांख्य मतानुयायी भट्टनायक का सिद्धान्त है। इन्होंने भरत सूत्र में आये 'संयोग' शब्द का अर्थ 'भोज्य–भोजक' भाव सम्बन्ध तथा 'निष्पत्ति' का अर्थ 'भुक्ति' किया है।

अभिव्यक्तिवाद

अलंकारिक आचार्य अभिनवगुप्त का सिद्धान्त है। इन्होंने भरतसूत्र में आये 'संयोग' शब्द का अर्थ 'व्यंग्य–व्यंजक' भाव सम्बन्ध तथा 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अभिव्यक्ति' किया है।

इनका सिद्धान्त इस प्रकार है :–

लोकेप्रमदादिभिः स्थाय्यनुमानेऽभ्यासपाटववतां काव्ये नाट्ये च तैरेव कारणत्वाादिपरिहारेण विभावनादिव्यापारवत्वादलौकिक–

विभावादिशब्दव्यवहार्य्यैर्ममैवेते, शत्रोरेवैते, तटस्थस्यैवैते, न ममैवैते, न शत्रोरेवैते, न तटस्थस्मैवैते। इति सम्बन्धविशेष–स्वीकारपरिहारनियमानध्यवसायात् साधारण्येन प्रतीतैरभिव्यक्तः सामाजिकानां वासनात्मकतया स्थितः स्थायी रत्यादिको नियतप्रमातृगतत्वेन स्थितोऽपि साधारणोपायबलात् तत्काल–

विगलितपरिमितप्रमातृभाव–वशोन्मिषित वेद्यान्तर सम्पर्कशून्या– परिमितिभावेन प्रमात्रा सकलसहृदयसंवादभाजा साधारण्येन स्वाकार इवाभिन्नोऽपि गोचरीकृतश्चर्व्यमाणतैकप्राणः विभावादि–

जीवितावधिः पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः पुर इव परिस्फुरन् हृदयमिव प्रविशन, सर्वाङ्गीणमिवालिंङ्गन अन्यत्सर्वमिव तिरोद्धद्, ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन, अलौकिकचमत्कारकारी श्रृङ्गार आदिको रसः।

.(3)

इस प्रकार से इन आचार्यों ने भरत सूत्र की अलग–अलग तरीके से व्याख्या की तथा 'रस सिद्धान्त' को स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

स्थायीभाव

मन के विकार को भाव कहते हैं और जो भाव आस्वाद, उत्कटता, सर्वजन–सुलभता, चार पुरूषार्थों की उपयोगिता और औचित्य के नाते हृदय में बराबर बना रहे, वह स्थायीभाव है। ''वास्तविक स्थायी भाव के उदाहरण 'रस' की परिपक्व अवस्था में ही मिल सकते हैं, अन्यत्र नहीं।'' जो भाव चिरकाल तक चित्त में स्थिर रहता है, जिसे विरूद्ध या अविरूद्ध भाव दबा नहीं सकते और जो विभावादि से सम्बद्ध होने से 'रस–स्वरूप' में व्यक्त होता है, उस आनन्द के मूलभूत भाव को 'स्थायीभाव' कहते हैं।

स्थायीभाव के भेद

रतिर्हासश्च शोकश्चक्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायीभावाः प्रकीर्त्तिताः।। .....(4)

रस तथा भेद

1. ''रस्यते इति रसः'' अर्थात् जो प्रवाहित हो, वह रस है।
2. ''रस्यते आस्वाद्यते इति रसः'' अर्थात् जिस का आस्वाद किया जाये, वो रस है।

अतः काव्य को पढ़ने, सुनने या नाटक आदि के देखते समय जो आनन्द की अनुभूति होती है, वह 'रस' है।

श्रंङ्गारहास्यकरूणरौद्रवीरं भयानकाः ।
वीभत्सादभुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।
.....(5)

अन्य आचार्यों का मत

विश्वनाथ कविराज

विश्वनाथ कविराज ने रस को सत्वोद्रेक से अखण्ड स्वप्रकाश और चिन्मय आनन्द स्वरूप माना है। उनका कहना है कि ब्रह्म के अखण्ड स्वरूप के समान 'रस' का स्वरूप भी अखण्ड तथा स्वप्रकाशित है –

सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्द चिन्मयः ।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्योब्रह्मास्वादसहोदरः।।
.....(6)

लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।।
.....(7)

आचार्य मम्मट

आचार्य मम्मट के अनुसार लोक में 'रति' अर्थात् प्रेम के जो कारण कार्य सहकारी होते हैं, उन्ही को जब कोई कवि काव्य की चमत्कार पद्धति से निबद्ध करता है तो वे ही क्रमशः विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभाव की संज्ञा को प्राप्त करते हैं एवं इन्हीं विभाव आदि को आस्वादयिता के हृदय में स्थित रत्यादि स्थायीभाव उद्बुद्ध होकर आस्वाद के विषय बनते हैं। इसी को हम रसास्वाद भी कहते हैं –

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।। .....(8)
विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।।
.....(9)

पण्डितराज जगन्नाथ

पण्डितराज जगन्नाथ आनन्द में चेतना की जागृति को 'रस' रूप माना है। इनके अनुसार जब चेतना का आवरण भंग हो जाता है, तब 'रति' आदि स्थायीभाव 'रस' कहलाते हैं।

वेद का वाक्य है :–

''सत्यं विज्ञानमानन्द ब्रह्म।'' .....(10)

अर्थात् जब वे स्थायी सत्य तथा विज्ञान रूप होने से स्वतः प्रकाशमान आत्मानन्द के साथ अनुभूत होते हैं, तब वे ही रस संज्ञा को प्राप्त करते हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त

आचार्य अभिनवगुप्त रस की दिशा में विशेष प्रयत्न किया है। उनकी मान्यता है कि आनन्द आत्मा का विषय है। विभाव आदि के माध्यम से वह काव्य या नाटक का विषय बनता है। काव्य, नाट्यादि के परिशीलन से हृदय की संवेदना आत्मस्थित हो जाती है तथा आत्मा आनन्द का अनुभव करती है। .....(11)

आचार्य आनन्दवर्द्धन

आचार्य आनन्दवर्द्धन रस और ध्वनि का अटूट सम्बन्ध दिखाकर 'रस' मत का ही समर्थन किया है तथा रस–ध्वनि को सर्वश्रेष्ठ ध्वनि माना है। प्रतीयमान अर्थ को परिभाषित करके रस की प्रधानता का संकेत किया है –

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति
लावण्यमिवाङंगनासु।। .....(12)

निष्कर्ष

रस सम्बन्धी आचार्यों के मत–मतान्तर तथा वाद–प्रतिवाद का अनुशीलन करने के पश्चात् निष्कर्षतः कह सकते हैं कि – ''रस सत्वोद्रेक, अखण्ड, स्वयंप्रकाशानन्द, आस्वादरूप, चिन्मयस्वरूप, ब्रह्मानन्द सहोदर, लोकोत्तर चमत्कार, प्राणरूप, ज्ञानरहित तथा अनिर्वचनीय है। अतः काव्य रस किसी फल का इन्द्रिय जन्य रस नहीं है। वस्तुतः यह उदात्त, स्पृहनीय,भावनिक, मानसिक आनन्द है, जो दीर्घकालीन होता है और सहृदयों को प्राप्त होता है।''

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय, रस निरूपण*
2. *अभिज्ञानशाकुन्तल– 2/11*
3. *का0 प्र0, चतुर्थ उल्लास, रस निरूपण*
4. *काव्य प्रकाश – 4/30*
5. *काव्य प्रकाश – 4/29*
6. *साहित्य दर्पण – 3/2*
7. *साहित्य दर्पण – 3/3*
8. *काव्य प्रकाश – 4/27*
9. *काव्य प्रकाश – 4/28*
10. *रस गंङ्गाधर, प्रथम आनन, रस निरूपण*
11. *काव्य प्रकाश, चतुर्थ उल्लास, रस निरूपण*
12. *ध्वन्यालोक– 1/4*